गुरु विरजानन्द दण्डी
मार्कण्डेय पुस्तकालय
5205

आर्य्य-धर्म्म-ग्रन्थ-माला। पञ्चम गुच्छक।

ओ३म्

ईसाई पक्षपात
और
आर्य्य समाज

रचयिता–मुन्शीराम जिज्ञासु

दयानन्दाब्द ३४
संवत् १९७३ विक्रमी
सन् १९१६ ई०

प्रथमवार २०००

मूल्य =)

पं० अनन्तराम के प्रबन्ध से सद्धर्मप्रचारक यंत्रालय, देहली में मुद्रित.

३०२२
आ० वि० २

प्रस्तावना ।

पादरी फ़रकुहार अपने आपको हिन्दूजाति का मित्र प्रकट करते रहे हैं। उस दोस्ती की आड़ में उन्होंने आर्य्यजाति की जड़ खोदने का यत्न किया है। आर्य्यसमाज को अपने मिशन के काम में रुकावट देखकर अन्य पादरियों की तरह मिस्टर फ़रकुहार ने भी बहुत विष घोला है। उनकी पुस्तक की पडताल मैंने सद्धर्म्मप्रचारक पत्र में की थी। वही लेखमाला पुस्तकरूप में प्रकाशित की जाती है। इस पुस्तक में प्रमाण सहित सिद्ध कियागया है कि बृटिश गवर्नमेंट को आर्य्यसमाज के विरुद्ध भड़काने का पवित्र काम भी अमेरिकन लाट पादरियों ने ही आरम्भ किया था।

गुरुकुल कांगड़ी
२९ कार्त्तिक, १९७३

मुन्शीराम जिज्ञासु

ईसाई पक्षपात और आर्यसमाज

प्रस्तावना

इस लेख माला का शीर्षक पाठकों को शायद भ्रम में डाल देगा। मैंने गत तीन वर्षों में इतने ईसाई महानुभावों से सम्बन्ध जोड़ा है और उन में से इतने मेरे गाढ़े मित्र बन गये हैं कि ऊपर का शीर्षक शायद मुझे विश्वासघाती सिद्ध करने का काम देगा। परन्तु मैं पहले ही यह बतला देना चाहता हूं कि उन नये मित्रों से सम्बन्ध होने से पहिले मैं ईसाई पादरियों को ऐसा पक्षपाती नहीं समझता था जैसा कि अब इन नये मित्रों की साक्षी से समझने लग गया हूं। मैंने अपनी आंखों से बड़े बड़े लाट पादरियों के लेख देखे हैं जिन से पता लगता है कि संसार के मत, ऊपर से धर्म, धर्म की पुकार मचाते हुए भी, अन्दर से अपने मतों के प्रचार तथा उनकी स्थिरता के लिये साम, दान, दण्ड और भेद—सभी इन्द्रजाल प्रयोग में ले आते हैं।

गत आठ वर्षोंमें जो जो आपत्तियां आर्यसमाज पर आती रही हैं उनके लाने वाले गुप्त चर समझे जाते रहे

हैं। इन आपत्तियों के लाने में, अपने स्वार्थ के लिये, गुप्त-चरों का भी कुछ भाग होगा। परन्तु मेरे पास इस बात के पूरे प्रमाण हैं कि बृटिश गवर्नमेन्ट को पहले पहल आर्य्य समाज के विरुद्ध भड़काने तथा उन से भयभीत कराने वाले ईसाई पादरी ही रहे हैं। और अब तक भी यह धार्मिक ? बोझ इन लोगों नें ही अपने कन्धों पर ले रक्खा है। ईसाई मत में उदारता कहां तक है—इस का पता इसी से लग सकता है कि सब से पहले और सब से पिछले, आर्यसमाज के विरुद्ध बृटिश गवर्नमेंन्ट को उकसाने वाले, पादरी युनाइटेड स्टेट्स अमेरिका की स्वच्छ स्वतन्त्र भूमि में जन्म धारण करने वाले हुए हैं। पन्थों का पक्षपात बड़े से बड़े उदार वायुमंडल से भी प्रभावित नहीं होता।

ऊपर के विचार, मेरे अन्दर एक नई पुस्तक को देख कर उठे हैं जो कुछ महीनों से ग्रन्थकर्त्ता ने मेरे पास भेज छोड़ी है और जिस के पढ़ने का अवसर मुझ को अभी मिला है।

पादरी जे. एन. फ़र्कुहार की नई पुस्तक

पुस्तक का नाम है, Modern Religious movements in India (भारतवर्ष की वर्तमान मज़हबी तहरीकें) और उस

के निर्माण कर्त्ता हैं, पादरी फ़र्कुहर साहब । यह महाशय अमेरिकन हैं और पुस्तक का विषय उन्होंने आठ व्याख्यानों में उन विद्यार्थियों को सुनाया था जो विदेश प्रचार के लिये तैय्यारी कर रहे थे । यह पुस्तक पादरी साहब ने भारत वर्ष के सर्व मतों के नेताओं के पास भेजी है । नये मिशनरी इस पुस्तक को भारतवर्ष के मत मतान्तरों के खण्डन के लिये अपूर्व शस्त्र समझते हैं। और जहां तक मुझे पता लगा है यह पुस्तक ब्रिटिश गवनमेन्ट के कर्मचारियों में भी प्रसिद्ध हो रही है । पादरी साहब का लिखने का ढङ्ग बड़ा मायावी और चित्ताकर्षक है । अपने विचार के असली रूप को पाठकों की आंखों से ओझल करने का पादरी महोदय को पूर्ण, अभ्यास है । इसीलिये उन्होंने, बड़े यत्न से, अपने मत की स्थापना करते हुएयह जतलाने का प्रयत्न किया है कि न केवल वह पक्षपात से रहित हैं प्रत्युत अपने काम करने की उन्होंने योग्यता भी ठीक प्राप्त करली है । वह पुस्तक की प्रस्तावना में लिखते हैं कि ११ वर्षों तक कलकत्ता मिशनरी कालिज में प्रोफेसर रहने और फिर पांच वर्षों तक ईसाई युवक सभा के मन्त्री पद पर रह कर अनीसाइयों के साथ मिलने के अतिरिक्त इन्हें सारे भारतवर्ष में घूमने और भारत के नये मतों

के नेताओं तथा प्रचारकों से भेट करने का अवसर मिलता रहा है। इस लिये इस काम में उन की योग्यता निर्विवाद है। परन्तु इस योग्यता के होते हुए भी सत्य का प्रकाश तभी हो सकता है जब कि अन्तःकरण शुद्ध और पक्षपात से रहित हो। यदि "बारहवर्ष दिल्ली में रह कर भाड़ ही झोंका" तो दिल्ली का इतिहास लेखक कैसे बन सकता है। और यदि १६ वर्ष भारतवर्ष में इसी दाँवपेच पर नष्ट किये कि किसी प्रकार अपना सम्प्रदाय बढ़े तो अन्य मतों के सच्चे इतिहास का प्रकाश कैसे हो सकता है।

पादरी फ़रक़ुहार के आन्दोलन के नमूने

पादरी फ़रक़ुहार के आन्दोलन का मूल्य समझने के लिये मैं उन की पुस्तक से कुछ उदाहरण ले लेताहूं। अपनी पुस्तक के प्रथमाध्याय में पादरी फ़रक़ुहार ने नये मतों के समय का एक ढांचा पेश किया है। उस में अंग्रेज़ों के असली विचार भारतवर्ष में प्रचलित होने का समय १८०० ईसवी नियत करके उन्होंने विचारों के क्रमशः परिवर्तन की व्याख्या की है। उस में मतों का वर्णन करते हुए काली वा दुर्गा को शिव की पत्नी लिखा

है। सनातनधर्म महासभा का वर्णन करते हुए पादरी साहेब पृष्ठ ३१६ पर लिखते हैं—

"In the Punjab the Movement was started by a Brahman, who had been a cook, but is now known as Dindayal Sharma. Infuriated by the attacks of the Arya Samaj on orthodox Hinduism, he attacked the Samaj in turn, and taught the people to retain their idols and live in orthodox fashion....."

"पंजाब में यह संस्था (सनातन सभा) एक ब्राह्मण ने चलाई, जो पाचक रह चुका था किंतु अब दीनदयालु शर्मा के नाम से प्रसिद्ध है। आर्यसमाज के, सनातन हिन्दू धर्म पर, आक्रमणों से तङ्ग आकर उसने भी समाज पर आक्रमण किये और जनता को अपनी मूर्तियों की रक्षा करके सनातन मर्यादा पर चलना सिखाया।" यह आज सुना है कि पं० दीनदयालु पाचक थे, इस से पहिले मैंने नहीं सुना था। तब फ़रक्कुहार साहब को यह सूझ कैसे लगी? उन्हीं की पुस्तक से दूसरा उद्धरण पादरी साहेब के आन्दोलन का स्रोत बतलायेगा। यह जतला कर कि सं० १८९६ में स्वामी ज्ञानानन्द ने मथुरा में निगमागम मण्डली जारी की, पादरी साहेब पृष्ठ ३१७ पर लिखते हैं—

"In 1902 it became possible to unite the various bodies in one organization, and the Bharat Dharma Mahamandal was formed at Muttra. Swami Gyananandji became organizing Secretary and Gopi Nath, a Graduate, worked along with him. Pandit Dindayal continued to do very valueable work for the movement."

"सं० १९०२ ई० में इन विविध संस्थाओं का एक सङ्गठन में लाना सम्भव हुआ और मथुरा में भारतधर्म महामण्डल का निर्माण हुआ। स्वामी ज्ञानानन्द संस्थापक मन्त्री हुए और गोपीनाथ-एक ग्रेजुएट-उन के साथ काम करता रहा। पं० दीनदयालु संस्था के लिये प्रशंसित काम करते रहे।" (पं० दीनदयालु के पुत्र की धमकी पर अब पादरी साहेब दूसरे एडिशन में इस अपवाद का संशोधन करेंगे)

क्या ऊपर के दोनों उद्धरणों से स्पष्ट ज्ञात नहीं होता कि पादरी फ़रकुहार का सम्वाद दाता, दोनों अवस्थाओं में, एक ही था। जो आचार हीन आदमी गोपीनाथ को ग्रेजुएट बतला सकता है. उसी का साहस हो सकता है कि पं. दीनदयालु जी को पाचक कह सके। परन्तु यहां तो परामर्श ही उनसे किया गया है जो वि-

चारणीय मत के विरोधी हों। पृष्ठ ३१६ पर लिखा है--
" आठ वर्षों तक यह नई स्थापन की हुई संस्था स्वामी ज्ञानानन्द की पथ दर्शकता में अधिक से अधिक कृतकार्य्यता का आनन्द लेती रही। संवत् १९१० में उस (ज्ञानानन्द) ने संस्थापक मन्त्री के पद से अलग होने का निश्चय करलिया। वह अपने प्रबन्ध के दिनों का बहुत उत्तम लेख दे सका।" जो लोग स्वामी ज्ञानानन्द के सारे चरित्र से परिचित हैं उनके लिये ऊपर का उद्धृत लेख बड़ा ही मनोरञ्जक है। फिर लिखा है कि मण्डल को अपने संस्थापक के बिछोड़े से जो हानि पहुंची है उसको पूरा नहीं करसका। स्थालीपुलाक-न्याय से कुछ उदाहरण इसलिये पाठकों के सामने रक्खे गये हैं कि वे उस भाव को समझ लें जिससे प्रेरित हो कर यह पुस्तक लिखी गई है।

पुस्तक का सार क्या है ?

जिस परिणाम पर पहुंचने के लिये यह पुस्तक लिखी गई है उसपर विचार तो इस आलोचना के अन्त में किया जायगा, परन्तु यदि एक वाक्य में उस का

निर्णय किया जाय तो पादरी साहेब का उद्देश्य यह दिखलाना है कि भारतवर्ष में इस समय जो धार्मिक जीवन के चिन्ह दिखाई देते हैं उनका प्रेरक एक मात्र ईसाई मत ही है। इस परिणाम पर पहुंचने के लिये पादरी फ़रकुहार ने पहले अध्याय में वर्तमान मतों के समय का कच्चा चिट्ठा सा दिया है। उस में और तो साधारण बातें हैं परन्तु एक बात ऐसी है जिससे पता लगेगा कि आर्य्य समाज के विरुद्ध बृटिश गवर्नमेंट को भड़काने वाली मुख्य शक्ति कौनसी रही है। यह बतलाते हुवे कि पहिले १८०० ई. में ईसाई मिशनरियों ने कैसे कार्य्यारम्भ किया पादरी साहेब पृष्ट ७ पर लिखते हैं

"Then it was not long before the wiser men both in the Missions and the Government began to see that, for the immeasurable task to be accomplished, it was most necessary that Missions should take advantage of the advancing policy of the Government and that Government should use Missions as a civilizing ally. For the sake of the progress of India co-operation was indispensible."

परन्तु यह ईसाई मिशनों तथा गवर्नमेंट के कर्मचारियों का धार्मिक जत्था इण्डिया को सभ्य बनाने के

लिये निभ न सका : सरकारी कर्मचारियों ने देखा कि हिन्दू धर्म का भाव जनता पर बड़ा प्रबल है और इस लिये शायद उन्हें ईसाई बनाने का प्रयत्न उनको बृटिश गवर्नमेंट के पञ्जे से ही न निकाल देवे। तब पादरी फ़ार-छुहार के शब्दों में —

"In consequence, the Government believed it to be necessary, for the stability of their position, not merely to recognize the religions of the people of India, but to support and patronize them as fully as the native rulers had done, and to protect their soldiers from any attempt to make them Christians."

"इस लिये गवनमेन्ट ने अपनी स्थिति की स्थिरता के लिये आवश्यक समझा कि, न केवल यह कि भारत-प्रजा के मतों को स्वीकार ही किया जाय प्रत्युत देशी हाकिमों की तरह उनकी रक्षा और सहायता की जाय और अपने सिपाहियों को ईसाई बनाने के प्रयत्नों से बचाया जाय। कुछ काल तक बृटिश आफ़िसर इसी अति की नीति पर डटे रहे परन्तु ग़दर के पश्चात् जब महाराणी विक्टोरिया ने इस देश को अपनी सीधी संरक्षा में लिया, तब से फिर मिशनरियों और राजकर्म-

चारियों का कुछ मेल होना आरम्भ हुवा। आगे की आलोचना में पता लगेगा कि किस प्रकार मिशनरियों से राज कर्मचारियों को भारत वर्ष को सभ्य बनाने में सहायता मिलती रही।

दूसरे अध्याय में ब्राह्म समाज, प्रार्थनासमाज, पारसी संशोधक दल तथा सर सैय्यद अहमद और उनके अनुयायियों के कामों पर आलोचना है। इसमें जो कुछ भी वास्तव्यता के विरुद्ध लेख हैं उनका नोटिस उनमतों के अनुयाइयों को ही लेना चाहिये। इन सब मतों से पादरी साहेब इस लिये असन्तुष्ट हैं कि ये लोग ईसा की शरण में सीधे नहीं गिर पड़े, यद्यपि इनके प्रवर्त्तकों ने ज़बरदस्त संशोधन का दावा किया।

तीसरे अध्याय में आर्य्यसमाजादि, उन संस्थाओं, पर कृपा की गई है जिन्हें पादरी साहेब इसलिये संशोधन के मार्ग में कण्टक समझ रहे हैं कि उनका उद्देश्य पुराने विचारों को नई रोशनी से पुष्ट करना हो रहा है।

चौथे अध्याय में सनातन मण्डल, थियासोफ़ी तथा शैवशाक्तादि मतों का ज़िक्र है जो पुराने विचारों का सर्वथा समर्थन करते हैं।

पांचवें अध्याय में धार्मिक जातीयता (Religious

Nationalism) पर विचार करके छटे में सुधारक संस्थाओं का वर्णन किया है और सातवें अध्याय में इन सब के प्रेरक आत्मा का निरुपण किया है। इन आवश्यक प्रारम्भिक वचनों की आवश्यकता इस लिये हुई कि आर्यसमाज को पादरी फ़रकुहार के फैलाए अशुद्ध विचारों का शिकार बनने से बचाने के लिए दूसरे अध्यायों में से उनके लेख उद्धृत करने पड़ेंगे।

पादरी फ़रकुहार ने अपनी प्रस्तावना में यह बतलाया है कि उन्हों ने प्रत्येक मत के विषय में उसी के अनुयाइयों से ही, एक वा दूसरे प्रकार, बातचीत करके उस मत का हाल लिखा तथा उसपर सम्मति प्रकाशित की है, परन्तु सारी पुस्तक के पढ़ने से पता लगता है कि जहाँ एक ही मत के दो विरोधी दलों के नेताओं से एक दूसरे के विरुद्ध किये आक्रमण उन्हों ने प्रामाणिक समझे है वहां आर्य्य समाज के सम्बन्ध में उन्हों ने जो कुछ लिखा है उसका आधार ईसाई पादरियों की ही साक्षी पर है। आर्य्यसमाज पर लिखते हुवे जहां आर्य्यसमाज को एक Powerful body कहा है वहां आरम्भ से ही यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि वह धार्मिक संस्था नहीं है। राज कोट की Mrs.. Sinclair Stevenson

के प्रयाण पर ऋषि दयानन्द का जन्म स्थान "टिङ्कारा" को बतलाकर ऋषि के जीवन में से शिवलिङ्ग पर चूहे के चढ़ने की घटना का वर्णन किया है और फिर लिखा है—

"इस सुन्दर वचन में हर कोई निश्चय की धड़कन अनुभव करेगा, और इसका परिणाम मूर्ति पूजा के विरुद्ध आर्य्य समाज के धर्मयुद्ध में आजतक दिखाई देता है। परन्तु प्रत्येक मनुष्य जो इन्डिया को जानता है, इसमें भी सहमत होगा कि जो घटना हुई वह चौदह वर्षों के एक हिन्दू बालक की समझ में नहीं आती सिवाय इसके कि उसने मूर्तिपूजा की निन्दा सुनी हो।"

फ़रकुहार साहेब इस गूढ़ प्रश्न पर चिरकाल तक विचार करते रहे, परन्तु प्रश्न का सन्तोष जनक उत्तर न मिला। पुर्नजन्म के सिद्धान्त को पादरी साहेब विष-तुल्य समझते हैं, इस लिये यह तो उनके विचार में ही नहीं आसकता था कि पूर्व के उत्तम संस्कार ही महात्माओं के पथदर्शक होते हैं। तब ऐसी अवस्था में फिर पादरी साहेब को श्रीमती 'सिन्क्लेयर स्टिविन्सन' की शरण लेनी पड़ी। श्रीमती जी ने कहा कि उन दिनों मोरवी के ठाकुर साहेब एक स्थानिक जैन साधु के

शिष्य थे और उनका राज महामन्त्री स्वयं स्थानिकवासी जैन था; इसलिये कोई सन्देह नहीं कि स्थानकवासी जैनों का प्रभाव लड़के पर पड़ा और स्थानिकवासी जैन सम्प्रदाय अपने मूल श्वेताम्बरियों में से मूर्ति पूजा को छोड़ कर ईसा की १५ वीं शताब्दी में जुदा हुआ था। समझ में नहीं आता कि जब कबीर, नानकादि ने पत्थरपूजा को घृणित कर्म बतलाने में सङ्कोच न किया तो दयानन्द को मूर्तिपूजा से घृणा होना क्यों असम्भव समझा जावे। परन्तु यहां तो सिद्ध यह करना है कि दयानन्द में मौलिक विकाश कुछ न था; वह साधारण पुरुष था।

विष फैलाने का विचित्र ढंग।

दयानन्द के सन्यास ग्रहण करने का हाल लिखकर पादरी साहब बतलाते हैं कि इस के पश्चात् आठ वर्षों तक वह स्थान स्थान में योग विद्या के प्रामाणिक गुरुओं की तलाश में लगा रहा। पादरी साहेब पूंछते हैं–

His autobiography does not tell us why he was so eager to learn Yoga method, but he probably regarded them as the proper means for re-

aching the emancipation which he was so desirous to reach.

मैं ने यहां पादरी साहेब के असली शब्द इसलिये दिये हैं कि उनकी लेखनी की मायाजाल का पता लग जाय। पादरी साहब को सन्देह है कि योग से मुक्ति मिल सकती है वा नहीं, तब प्रगट यह करना चाहते हैं कि दयानन्द का असली उद्देश्य तो शायद योग की सिद्धियों द्वारा कुछ और फल प्राप्त करना था परन्तु वह बाह्य जगत को विश्वास दिलाना चाहता था कि वह योग विद्या उस मुक्ति के लिये सीखना चाहता है जिस की प्राप्ति उसे अभीष्ट थी। मेरी इस कल्पना की पुष्टि अगले पृष्ट (१०६) से होती है। यह बतलाकर कि उसके पश्चात् शङ्कर के मायावाद में दयानन्द का विश्वास न रहा और यह जतला कर कि उसने एक मृतक शरीर की चीर फाड़ के अनुकूल आधुनिक वैद्यक की पुस्तकों को न पाकर उन्हें लाश के साथ ही बहा दिया, पादरी साहेब एक और मायावी लेख द्वारा अधिक विष फैलाना चाहते हैं। वह लिखते हैं—

The autobiography stops short at the begining of 1857, and we are without information of his

activities until 1860. Thus there is no echo of the Indian mutiny whatsoever in his life.

"सं० १८५७ ई० पर जाकर स्वामी दयानन्द की स्वयं वर्णित जीवनी ठहर जाती है और १८६० तक उनकी उद्योगता का कुछ पता नहीं लगता। इस प्रकार उनके जीवन में ग़दर की गूंज का कुछ पता नहीं चलता" क्या इस से भी बढ़कर कुटिल व्यंगोक्ति का कुछ प्रमाण मिल सकता है। यूरोपियन सभ्यता के ठेकेदारों को कितना भी समझाने का प्रयत्न क्यों न करो परन्तु उनके मस्तिष्क में यह बात नहीं घुसती कि प्राकृतिक लाभ की अभिलाषा के अतिरिक्त भी कोई समझदार मनुष्य तपका जीवन व्यतीत कर सकता है। मेरा गत सात वर्षों का अनुभव यह है कि बड़ों में सिवाय लार्ड हार्डिङ्ग और सर जेम्स मेस्टन के और छोटों में से मेरे चार पांच मित्रों के अतिरिक्त कोई भी गोरे चमड़े वाला भारत निवासियों के तप के जीवन का आध्यात्मिक विद्या के साथ सम्बन्ध मानने को तैयार नहीं। सं० १९११ में वाइसराय की कौन्सल के एक उच्च सभासद् से गुरुकुल की बातचीत होनेपर उन्हों ने अनायास ही कह दिया कि यदि केवल शिक्षा ही उद्देश्य है तो इतने तप

के नियमों (Ascetic Rules) की क्या आवश्यकता है। मैंने उस समय दिल खोल कर अपने हाकिमों की भूल के विषय में कहा जिस पर सभासद महाशयने बातको यह कह कर टाल दिया कि उनका तात्पर्य्य ही कुछ और था। आज का विश्वव्यापी युद्ध भी तो यही सिद्ध करता है कि युरोपियन जातियां जहां आर्थिक लाभ के लिये अपना अन्तिम पुरुष तक कटवाने को तैय्यार हैं, वहां आत्मिक सुधार के लिये उनमें बहुत थोड़े मनुष्यों के अन्दर आत्मसमर्पण का भाव उत्पन्न हो सकता।

मैं बतला चुका हूं कि पादरी साहेब दयानन्द को किसी सुधार के मौलिक विचार के लिये भी प्रतिष्ठा देने को तैय्यार नहीं। १४ वर्ष के मूल शङ्कर के अन्दर शिवलिङ्ग की पूजा पर सन्देह न होता यदि वह अमूर्ति पूजक जैनियों के संसर्ग में न आता। परन्तु मूर्ति पूजा का निषेध दयानन्द ने कब आरम्भ किया? इस प्रश्न का उत्तर फ़रकुहार साहेब इस प्रकार देते हैं:—

This change seems to have come in the year 1866. which was clearly a time of crisis for him. During that year he came in contact with various missionaries, and had long conversations with them. The same year finds him not only preach-

ing against idolatory at Hardwar, but telling the pilgrims there that saced spots and ceremonial bathing are of no religious value whatsoever and denouncing the great Vaishnava book, the Bhagvat Purana, as immoral.

पादरी साहेब की इस ऐतिहासिक खोज पर तो उन्हें सारे संसार की ऐतिहासिक खोज की सभाओं से जड़ाऊ पदक मिलने चाहियें। सं० १८६६ में स्वामी दयानन्द का बहुत से ईसाई मिशनरियों से मेल हुवा और लम्बी बात चीत भी हुई, तभी से (पादरी फ़रकुहार की व्यवस्थानुसार) स्वामी जी ने मूर्ति पूजा तथा जल स्थलों को तीर्थ मानने का खण्डन आरम्भ किया और भागवत पुराण को अश्लील बतलाया। पादरी फरकुहार की सम्मति में सिवाय ईसाई पादरियों के इन अविद्याओं का किसी ने खण्डन ही नहीं किया था। शायद कबीर देव ने भी पादरियों से शिक्षा लाभ करके ही लिखा था कि—

पत्थर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूं पहाड़।
इस पत्थर से चकी भली जो पीस खाय संसार।

पादरी फ़रकुहार ने यह कहां से मालूम किया कि सं० १८६६ में स्वामी जी मिश्नरियों से मिले ?

निस्सन्देह ऋषि दयानन्द के जीवनचरित्र से; परन्तु वहां तो इस घटना का वर्णन ही और प्रकार है। वहां लिखा है कि पहिले स्वामी दयानन्द ने पुष्कर में जाकर के पाखण्ड खंडन किया और लोग उन के व्याख्यानों से ऐसे प्रभावित हुए कि कंठियां तोड़ २ कर उनके सामने ढेर लगा दिया। मूर्ति पूजा का प्रबल खण्डन किया और बड़ी भारी खलबली मचादी। वहां से लौट कर ईसाई पादरियों से भेंट हुई, परन्तु कैसी ? जीवन चरित्र में लिखा है—"मई १८६६ के अन्त में स्वामी जी अजमेर लौट आये...........................फिर स्वामी जी की पादरी ग्रे साहेब, राबिन्सन साहेब और शोलबोर्ड साहेब से तीन दिनों तक प्रेमपूर्वक बात चीत होती रही। कई सौ आदमी इस मज़हबी चर्चे को सुनने के लिये आया करते थे.... पादरी राबेन्सन ने स्वामी जी की बाबत अपनी लेखनी से लिखा है कि—"यह एक वेद के ज्ञाता हैं हमने आयु भर संस्कृत का ऐसा विद्वान् नहीं देखा। ऐसे आदमी संसार में अप्राप्त हैं। जो इनसे मिलेगा उसे बहुतलाभ होगा। जो कोई साहेब उन से मिलें बड़ी मान प्रतिष्ठा का बर्ताव करें॥"

कहां यह वास्तविक घटना और कहां फ़रक़ुहारसाहेब

की विचित्र कल्पना ? और यह पुस्तक सहस्रों नए पादरियों को आर्य्यसमाज के विरुद्ध युक्ति और प्रमाण से सुसज्जित करने के लिये रची गई है पादरी साहेब दयानन्द को तुच्छ सिद्ध करने के लिये इतने उतावले हैं कि उसका चलना, फिरना, कपड़े पहिरना तक भी अन्यों का अनुकरण ही सिद्ध करने के पीछे तुले हुए हैं। जब केवल लंगोट रखता था तब तो पुराने फ़कीरों की नकल थी और जब गृहस्थों में व्याख्यान देने के लिये कपड़े पहिनने लगा तो भी स्वयं उसे कपड़े पहिरने की योग्यता न थी। उसमें भी उसने ब्राह्म समाजी नेताओं की नकल की। पादरी साहेब पृष्ठ १०६ पर लिखते हैं:—

He began to wear regular clothes: and a picture which still survives shows that he must have copied the Brahma leaders, whose dress was a modification of missionary custume—

ठीक है। ब्राह्मी लीडरों ने तो अपनी पोशाक ईसाई मिश्नरियों की पोशाक में कुछ परिवर्तन कर के बनाई परन्तु दयानन्द ने उनकी नक़ल की होगी। किस ब्राह्म लीडर की नक़ल ? महर्षि देवेन्द्रनाथ, बाबू केशवचन्द्र सेन, पं० शिवनाथ शास्त्री ये सब तो नङ्गे शिर रहते हैं। फिर शिर का साफ़ा किस की नकल थी ? पादरी फ़रक्कुहारने

शिवनारायण अग्निहोत्री वा अन्य दो तीन पञ्जाबी ब्राह्मसमाजिओं को वा उनके चित्रों को देखा होगा। परन्तु क्या पञ्जाब के पुराने आर्य तथा ब्राह्म समाजियों को बतलाने की आवश्यकता है कि शिवनारायण ने स्वामी जी की ही नक़ल की थी और उस की नक़ल अन्यों ने। मुम्बई में स्वामी दयानन्द के काम और उनके हिन्दू तथा प्रार्थना समाज के साथ सम्बन्ध का हाल लिख कर पादरी साहेब लिखते हैं:—

He seems to have had more than usual success in the city (Bombay) for he returned early in 1875, and there launched his great scheme, the foundation of the Arya Samaj. The members of the Prarthana Samaj had hoped to be able to unite with him but the differences were too deep. It is clear, however, that the main features of his society were borowed directly from the Brahma and Prarthana Samajes, as he saw them working in Calcutta, Bombay and elsewhere.

क्यों न हो। जब कपड़े पहिरना तक दयानन्द ने ब्राह्मसमाजी नेताओं से सीखा तो अपने समाज के मुख्य सिद्धान्त और कहां से लेने जाता।

एक उदाहरण और देकर फिर आगे चलूंगा। आर्यसमाज

में दो दलों के होने का समाचार देते हुए पादरी साहिब कालिज पार्टी को उदार दल और वेजिटेरियन पार्टी को अनुदार दल बतलाते हैं। और यहां भी यही संकेत करने का तात्पर्य है कि दो दल बनाने में आर्यसमाज को कुछ नई बात न सूझी; इस में भी इन्होंने ब्राह्मसमाजियों का ही अनुकरण किया। पादरी साहब लिखते हैं:—

As Keshab led out the progressives, and left Debendra and the conservatives behind; so the Arya Samaj broke up into the College or "Cultured" party and the Vegetarian or "Mahatma" party. The former are progressive, stand for modern education and for freedom in diet, and declare that the Arya Samaj is the one true universal religion, which must be taught to all the world; while their opponents favour the ancient Hindu education, stand by vegetarianism and declare that the teaching of the Samaj is pure Hinduism, but not the universal religion.

पादरी फ़रकुहार का मुख्य उद्देश्य तो यह सिद्ध करना है कि दयानन्द की शिक्षा विदेशियों (ईसाइयों और मुसलमानों) के विरुद्ध हिन्दुओं को भड़काने की थी और उन के मतानुसार इस के लिये वह (दयानन्द)

मक्कारी का भी काम में लाता था, परन्तु इस के साथ ही वह यह भी सिद्ध करना चाहते हैं कि दयानन्द ने और उस की मृत्यु के पश्चात् आर्य्यसमाज ने जो कुछ भी अपना कार्य्यक्रम बनाया वह ईसाई मिशनों का अनुकरण मात्र था। पृ० १२४, १२५ पर अन्तरङ्ग और प्रतिनिधि सभाओं को ईसाइयों की नकल बतला कर पादरी साहब लिखते हैं—

'समाज अन्य सूरतों में भी ईसाई आयास का अनुकरण करता है। उन के भी ट्रैक्टसुसाइटी, स्त्रीसमाज, आर्य्य कुमार सभा और अनाथालय और उनका काम पतित जातियों में है जिसका वर्णन दूसरे स्थान में होगा।" इस सम्बन्ध में पादरी साहेब ने उन लेखों तथा व्याख्यानों का भी हवाला दिया है जो हमारे दयानन्द कालिज दल के भाइयों के मुख वा लेखनी से अपने सम्प्रदाय में जोश डालने के लिये प्रसिद्ध किये गये हैं। इस में पादरी साहेब पर कोई विशेष दोष नहीं आता। कुछ विचार हीन आर्यसमाजी भी अन्य मतों के साथ ऐसा ही व्यवहार करते हैं।

आर्य समाजी और सनातन समाजी सब जानते हैं कि जिन वेद मन्त्रों का स्त्री शूद्र की उपस्थिति में पढ़ना

पोप समझा जाता था उन्हें, आर्य्यसमाज से अपने सम्प्रदाय को बचाने के लिये, महा मण्डल की सभाओं में पढ़ना पड़ता है परन्तु पादरी साहेब की डींग यह है कि यह सब कुछ ईसाईमत की बदौलत है। पृ० ३२२ पर यह लिखते हैं :—

"Yet this most orthodox movement backed by the heads of all the greatest Hindu scets, sells copies of any part of the Vedas to any one who cares to buy them, and encourages their study, no matter what a man's caste may be. Clearly, the freedom as well the Universality of christianity is working, with irressistible force within the very citadel of Hinduism."

कौनसा इतिहास वेत्ता है जिसे "ईसाई मत की स्वतन्त्रता और उस की सार्वभौमता' का राग अलापना आश्चर्य में न डाल दे। ईसाई लाट पादरियों की उदारता तथा स्वतन्त्र प्रियता का चित्र कभी ईसाई मिशनों की ज़ंजीरों को काट कर बाहर निकले हुवे सभ्य खींचेंगे तो वह बड़ा ही सजीव चित्र होगा। कहां तक इस विषय में लिखा जाय पादरी साहेब का यह ख्याल है कि न केवल आर्य समाज प्रत्युत भारतवर्ष के सब नवीन मतों

का नेता और शासक ईसाई मत ही है । पृ० ४३३ पर पादरी फ़रकुहार साहेब लिखते हैं:—

"While the shaping forces at work in the movements have been many, it is quite clear that Christianity has ruled the development throughout"

भारत के अन्य नवीन मत तो अपने लिये स्वयं उत्तर ढूंढेंगे परन्तु आर्यसमाज के विषयों में इस डींग का उत्तर डाक्टर टी० जे सदर लैंड, (Doctor of Divinity) ने ही दे दिया है । एक अमेरिकन त्रिमूर्ति [बाप, बेटा, और पवित्रात्मा] के उपासक पादरी का उत्तर एक ब्रह्म के उपासक ऐमेरिकन (Unitarian Christian) की लेखनी से ही शोभा देता है । और यह उत्तर सर्वथा निष्पक्ष भाव से लिखा गया है क्योंकि इस के लिखते समय डाक्टर सदरलैंड के सामने पादरी फ़रकुहार की पुस्तक न थी । अमेरिका के प्रसिद्ध अखबार (Unity) के १६ अगस्त के अंक में, लाला लाजपत राय की आर्यसमाज सम्बन्धी पुस्तक की समालोचना करते हुवे, पृ० ३६४ के दूसरे कालम में, डाक्टर सदर लैंड लिखते हैं:—

"......It is a purely Indian movement which arose almost wholly apart from Christian influences *or any influences of* [illegible] *an or Western*

पुस्तकालय ... 5205
दयानन्द महिला म...

world. Even the languages which it employs in its oral and printed propaganda have been and still are almost wholly the ancient Sanskrit and the modern native languages of India. In this it differs widely from Indian Christianity and from the Brahms Samaj; both of which have much literary connection with Europe and America and make much use of the English Language.

"यह [आर्यसमाज] एक विशुद्ध इण्डियन तहरीक है जो कि ईसाई प्रभावों से लगभग सर्वथा अलग वा [यों कहो कि] ईसाई और पश्चिमीय प्रभावों से सर्वथा अलग उठी थी। यहां तक कि जो भाषा यह [आर्यसमाज] अपने मौखिक वा छपे हुए प्रचार में प्रयुक्त करता रहा है वा इस समय करताहै वह प्राचीन संस्कृत और भारतवर्ष की वर्तमान प्रान्तिक भाषायें हैं। इसमें इसका इिन्दोस्तानी क्रिश्चियानिटी [देशी ईसाइयों] और ब्रह्म समाजियों से सर्वथा भेदहै। क्योंकि वे दोनों यूरप और अमेरिका के साथ साहित्य विषयक बहुत सा सम्बन्ध रखते और प्रायः इङ्गलिश भाषा ही का व्यवहार करते हैं।"

अनुवाद में डाक्टर सदरलैंड के लेख का पूरा बल दिखाया नहीं जा सका। उनका मत स्पष्ट है कि

आर्यसमाज ने कुछ भी ईसाई मत से नहीं लिया; केवल यही नहीं प्रत्युत यह कि अपने कार्यक्रम में उसने पश्चिम से कोई सहायता नहीं ली। क्या पादरी फ़रकुहार का तात्पर्य्य यह जतलाना है कि आर्य्य धर्म के अन्दर प्रचार का कोई स्थान न था। तब अशोक के प्रचारकों का पेलेस्टाइन में अपनी शाखा स्थापन करना और उस शाखा (Council of essenes) के एक सभासद यहुन्ना (John the Baptist) के हाथ से ईसामसीह का अभिषेक होना क्या इतिहास से धोया जा सकता है। मसीह बौद्धों का चेला था इसलिये उसने बौद्धो से धर्मप्रचार का ढङ्ग सीखा और बुद्ध देव ने जो कुछ लिया सो सनातन आर्यधर्म से।

दोनों साक्षियां सामने हैं। एक ओर निष्पक्ष "एकमेवाऽद्वितीयं ब्रह्म" का उपासक डा० सदरलैंड और दूसरी ओर आर्य बालकों तक से शास्त्रार्थ में हार कर खिजे हुए मिशनरियों के प्रतिनिधि पादरी फ़रकुहार-दोनों में से जिसका लेख निष्पक्ष मालूम हो उसे मान लीजिये।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्यों ईसाई पादरी आर्य्यसमाज का विरोध करते हैं। ऋषि दयानन्द के प्रचार

का काम आरम्भ करने से पहिले तो सारी आर्य्यप्रजा ईसाई मिशनरियों का शिकार हो रही थी ।

जिस हिन्दू को एक वार अपने हाथका छुवा पानी पिला दिया उसे कोई भी हिन्दू अङ्गीकार करने को तय्यार न था । ईसाई पादरियों के सामने बड़े २ हिन्दू पंडित मुंह छिपाये फिरते थे । बहुत से गुप्त वेतन लेकर हिन्दू पौराणिक मत के खंडन का मसाला ईसाई पादरियों को देते थे । हिन्दू युवकों के मत डांवा डोल हो चुके थे । ऐसे समय में ऋषि दयानन्द ने वेद की ढाल हाथ में लेकर अविश्वास तथा अश्रद्धा के आक्रमण का सामना करना शुरू किया । तीन चार वर्ष के काम से ही ईसाई पादरियों को लेने के देने पड़ गये । सैंकड़ों ईसाई हुए हिन्दू फिर से अपने प्राचीन धर्म में लौटने लगे । सहस्रों गिरते २ बच गये । पादरियों की खेपों की खेपें मारीं जाने लगीं । जहां पौराणिक देवतों की अश्लील, लज्जास्पद कहानियां सुना कर ईसाई पादरी हिन्दू युवकों को शर्मिन्दा करते थे वहां आर्य युवकों ने बाईबिल पर प्रश्नों की बौछाड़ से पादरियों का नाक में दम कर दिया । पादरी जिस चौराहे पर प्रचार को जाता ५ मिनट पीछे ही आर्य्य युवक प्रश्न जा करता और पादरी

साहिब को बोरिया बन्धना उठा कर कहीं अन्यत्र जाना पड़ता। तब बेचारे ईसाई पादरी क्या करते—थोथे हथियारों पर उतर आये और गवर्नमेंट को यह कह और लिख कर भड़काने का यत्न करते रहे कि आर्य्यसमाज का मिशन पोलिटिकल है। ये बृटिश गवर्नमेंट को निकाला चाहते हैं।

ऋषि दयानन्द के जीवन काल में तो पादरियों की दाल न गली। उन के विपक्षी का व्यक्तित्व ऐसा उच्च था कि गवर्नमेन्ट के बड़े कर्मचारी उनका सदा मान ही करते रहे। परन्तु आर्य्य समाज के प्रवर्त्तक की मृत्यु के पश्चात् पादरियों ने बड़ी विचित्र नीति का अनुसरण किया। उन्हों ने अंग्रेज़ डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को समझाना शुरू किया कि आर्य्यसमाज से ईसाई मत को इतना भय नहीं जितना कि बृटिश गवर्नमेन्ट को है। यह नीति बदलने का एक विशेष कारण हुवा। ईसाई पादरियों ने यह समझा था कि मूर्ति पूजा का गढ़ जब स्वामी दयानन्द तोड़ गिरायेंगे तो उसकी लूटका माल उन्हें मिलेगा। परन्तु उन्हों ने बड़ी निराशा से देखा कि पुरानियों और कुरानियों की बुत परस्ती और काबा परस्ती को खण्ड २ करने वाले आदित्य सन्यासी ने किरानियों की मर्दुम

परस्त्री को भी आड़े हाथों लिया और उनके गलों पर भी हाथ साफ़ करने लगा। तब उनका क्रोध आर्य्यसमाज पर टूट पड़ा। खुले शास्त्रार्थों में कृतकार्य्यता न देखकर उन्हों ने पैशुन्य से काम लेना आरम्भ किया। मुझे शोक से लिखना पड़ताहै कि इस पवित्र काम में अगुवा भी फ़र्कुहार साहेब के एक अमेरिकन भाई ही थे। American Methodist mission के लाट पादरी [Bishop] पारकर महोदय ने एक मजिस्ट्रेट को पत्र लिखा जिसमें से निम्न लिखित उद्धरण बड़ा मनोरञ्जक है:—

"My opinion is that the Government has much more need to watch the Aryas than we missionaries have. They have their secret Samajes. They will control the National Congress and they are as full of hate as possible.... The contest is to be between this new sect and the Muhammadans. The latter have never given up hope of supremacy in India, and now this new sect has hopes and demands quite as large as the Muhammadans formerly had. Both of these are suspicious of the spread of Christianity. In my opinion if this work goes on the Muhammadans will side to the Christians after a time and become more loyal to Government then they have ever been. From all the

talk, private and public, that I have heard I am convinced that the Aryas are taking the place of the Irishman and are bound to go against the Government."

"मेरी सम्मति यह है कि हम मिशनरियों की अपेक्षा आर्य्यों की निगरानी करने की गवर्नमेण्ट को अधिक आवश्यकता है। उनकी गुप्तसभाएं हैं। वे नेशनल कांग्रेस को भी वश में करेंगे और वे द्रोह से भरे हुवे हैं....विवाद इस नये मत और मुसलमानों के मध्य में होने वाला है। पिछलों (मुसलमानों) ने भारत वर्ष के आधिपत्य की आशा कभी भी छोड़ी नहीं है, और अब इस नये सम्प्रदाय की आशाएं और याचनायें भी उतनी ही अधिक हैं जितनी मुसलमानों की पहिले थीं। ये दोनों ही ईसाईयत के फैलने को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। मेरी सम्मति में यदि काम चलता रहा तो कुछ काल के पश्चात् मुसल्मान तो ईसाइयों की ओर हो जायंगे और गवर्नमेन्ट के, पहिले की अपेक्षा, अधिक भक्त बन जावेंगे। जो प्रसिद्ध और गुप्त बात चीत मैंने सुनी हैं उन से मुझे निश्चय होगया है कि आर्य्य लोग आयरलैण्ड वालों का स्थान ले रहे हैं और उनका गवर्नमेण्ट के विरुद्ध जाना आवश्यक है।"

एक धर्मात्मा पादरी की लेखनी से कैसा उत्तम उपदेश [Sermon] निकला है। यह आज पता लगा कि मुसलमानों को आर्य्यों के विरुद्ध करने वाले लाट पादरी लोग ही रहे हैं। और यह हैं मसीही क्रियात्मक आदर्श जिसके आधार पर पादरी फ़रकुहार भारतवर्ष के सर्व नवीन मतों के अनुयायियों को अपने चर्च का निमन्त्रण देते हैं।

यदि मैं चाहूं तो एक प्रमाणसहस्री बनाकर अपने पाठकों के भेट कर सकता हूं जिससे ईसाई पादरियों के क्रमशः विष फैलाने और गवर्नमेन्ट को आर्यसमाज के विरुद्ध उठाने की मनोरञ्जक कहानी सर्वांग पूर्ण रूप में सामने खड़ी होजाय, परन्तु न तो जीवन इतना लम्बा कि इस निरर्थक कामके लिये समय नष्ट किया जाय और नहीं इसकी कुछ आवश्यकता है, क्योंकि हमारे न्याय परायण प्रजापालक वाइसराय तथा सरल सत्यप्रेमी लाट साहेब (सरजेम्समैस्टन) ने अपनी दया और न्याय दृष्टि से सारे सन्देह के बादलों को छिन्न भिन्न कर दिया है।

लोहे से लोहा काटने का प्रयत्न ।

पादरी फ़रकुहार को अभीष्ट यह सिद्ध करना है कि दयानन्द मक्कार था और इस शुभ यज्ञ की पूर्ति के लिये उन्होंने उसी प्रकार के साधनों से काम लिया है। मेरी यह प्रतिज्ञा उन के शेष लेख से सिद्ध होगी और इसलिये उसी की पड़ताल से उनकी मानसिक दशा का भी पता लग जावेगा ।

दयानन्द के मुख्य मंतव्य पृ० ११३, ११४ पर इस प्रकार वर्णन किए हैं—

(१) परमेश्वर एक है, उसी की पूजा होनी चाहिये; आत्मा से न कि मूर्तियों द्वारा । [२] चारों वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं । उन में ही सर्व आत्मिक तथा सांसारिक विद्या के मूल सिद्धांत मिलते हैं, उन में विशेष देश काल का वर्णन अविद्या से दीखता है। वेद में बहु देवता वाद नहीं है । एक सच्चे परमेश्वरके सब नाम हैं । वेद स्वतः प्रमाण है, और शेष ऋषिकृतग्रंथ सब परतः प्रमाण हैं; जहां वे वेद विरुद्ध हों माननीय नहीं हैं । [३] वेद पुनर्जन्म और कर्म की शिक्षा देते हैं । [४] पाप कभी क्षमा नहीं किये जासकते । [५] मुक्ति जन्म मरण के बन्धन से छूटने का नाम है ।

फ़रकुहार महाशय ने अपने लम्बे लेख में कहीं भी युक्ति द्वारा इन मन्तव्यों के खण्डन करने का साहस नहीं किया, सिद्ध केवल यह करना चाहा है कि यह सारे मन्तव्य अहिन्दू हैं। सब से पहिले मेक्समूलर और डाक्टर ग्रिसवोल्ड के आधार पर आपने यह युक्ति शून्य प्रतिज्ञा कर दी है कि वेदों के अर्थ दयानन्द तोड़ मरोड़ के करता था। वह लिखते हैं कि असल में तो वेद बहुदेव पूजा का ही समर्थन करते हैं परंतु दयानन्द ने बृटिश गवर्नमेंट के आधीन उत्तरीय हिन्द की घटनाएं तथा मनुष्यों की अवस्था देख कर अपने अन्दर दो "अहिन्दू विचार" घुसा लिये। एक यह है कि हिन्दू देवमाला का वेद में कोई अस्तित्व ही नहीं और दूसरा यह है कि पश्चिमीय पदार्थ विज्ञान शास्त्र तथा आविष्कार के विना काम नहीं चलता और उन को वेदों में से निकालना चाहिये। पादरी साहेब लिखते हैं—

"अब ये दोनों विचार समुदाय उस के मनमें दृढ़ता से जम गये थे। आधुनिक शिक्षा उसने पाई न थी। अंग्रेज़ी पुस्तकें पढ़ने के लिये उसे पर्य्याप्त अंग्रेज़ी आती न थी (पर्याप्त क्या कुछ भी नहीं आती थी— (लेखक) और आधुनिक विचार तथा आलोचन—शैली की उस में

धारणा न थी। और हिन्दू शिक्षा भी उसे पूर्ण न थी। उसने अपने अन्धे गुरु से हिन्दू साहित्य में व्याकरण तथा दर्शनों का सर्वोत्तम भाग पढ़ा परन्तु उसे पूर्ण वैदिक शिक्षा न मिली थी। जो समय उसने विरजानन्द के पास बिताया वह इस उद्देश्य के लिये पर्याप्त न था। इसलिये यह विश्वास करते हुये कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है उसने स्वभावतः यह निश्चय किया कि वह (वैदिक ज्ञान) उस के माने हुये सचाई के सिद्धांतों के अनुकूल है अर्थात् वह एकेश्वर वाद पुनर्जन्म और आधुनिक साइन्स की शिक्षा देता है कि यह हिन्दुओं के देवताओं और यज्ञ (Sacrifice) को नहीं मानता? और जन्म तथा शिक्षा से हिन्दू होते हुये और हिंदू विचार शैली का अनुसरण करते हुये उसने सब से पहिले हिन्दु पण्डितों की तरह साहसी व्याख्यान शैली द्वारा जो कुछ असत्य समझता था वेदों से निकालने और जो कुछ सत्य समझता था उसे उन में ढालने का प्रयत्न किया" (पृ० ११५ तथा ११६) फ़रकुहार साहेब का उपरोक्त लेख कैसा युक्तिशून्य है, इस पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। दयानन्द को तो विरजानन्द से वेदों की पूर्ण विद्या लाभ करने का अवसर न मिला, परन्तु मेक्समूलर और ग्रिसवोल्ड के अंग्रेज़ी

में लेख पढ़ कर संस्कृत शून्य फ़रकुहार वेदवेत्ताओं की आलोचना करने योग्य होगये ? एक ओर तो यह मानते हैं कि दयानन्द अपने अर्थों के लिये बहुत ही पुराने भाष्यकारों का आश्रय लेता है और दूसरी ओर यह लांच्छन लगाते हैं कि उसने जो कुछ लिया आधुनिक ईसाइयों से लिया। शेष रहा यह कि एक—ईश्वर वाद अहिन्दू विचार है यह तो ठीक ही है। दयानन्द ने तो स्पष्ट लिखा है कि एकेश्वर पूजा तथा अन्य सचाइयां श्रेष्ठ आर्य्यपुरुष ही समझ सकते हैं हिन्दू (दास) बेचारे इन बातों को क्या समझ सकेंगे।

इस से आगे मेक्समूलर तथा ग्रिसवोल्ड के लेखों का भी अशुद्ध सारांश देकर फ़रकुहार साहेब लिखतेहैं—

"इस प्रकार के अर्थ करने में उस की स्थिति सर्वथा अकेली है; प्राचीन वा आधुनिक किसी हिन्दू ने यह शिक्षा नहीं दी, जो यह देता है। और हमें यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि प्रत्येक पश्चिमीय पण्डित [दयानन्द] के (भाष्य) क्रम तथा परिणामों का निराकरण करता है।"

पादरी फ़रकुहार ने अपने जान यह बड़ा आक्षेप किया है परन्तु उन्हें ज्ञात नहीं कि ऋषि दयानन्द स्वयम्

कहते थे कि जो शिक्षा वह वेद से निकालते हैं वह शिक्षा ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्य्यन्त आजसे ५०००वर्ष पहिले के ऋषि मुनि निकालते थे। महाभारत के युद्ध में सर्व-नाश कराके जहां आर्य्यों ने दूषित हिन्दू नाम ग्रहण किया वहां वेद के यथार्थ को भी वे भुला बैठे। और पश्चिमी पंडितों का तो प्रमाण सर्वथा हास्य जनक है। क्या फ़रकुहार महाशय ने कभी गोल्डस्टकर और ब्विटनी की भी कोई पुस्तक पढ़ीहै? ग्रिसबोल्ड के लेख पढ़कर वेद का महत्वनहीं मालूम हो सकता। पादरी साहेब को यह जानना चाहिये कि "लीहे लीहे गाड़ी और कपूत" चला करते है। सिंह, सूर्मा और सपूत लकीर को फांद जाया करते हैं। पादरी फ़रकहार ने ग्रिसबोल्ड के एक लेख का हवाला देकर यह चेष्टा की है कि दयानन्द का अर्थ ठीक नहीं, परन्तु जब ग्रिसबोल्ड भी ऋषि दयानन्द के अर्थों को वेदाङ्गों के विरुद्ध न सिद्धकर सका तो फ़रकुहार का हवाला भी निरथक होजाता है। इस लेख का भूमिका बांधते हुए पादरी साहेब लिखते हैं कि दयानन्द के ऐसे बेहूदा अर्थ पढ़ कर उसकी सरलता तथा सचाई में सन्देह हो जाता है। पादरी साहेब यहीं तक अनुमान पर बस नहीं करते, उन के पास यह सिद्ध करने के लिये सीधी

साक्षी भी है कि दयानन्द ने स्वयम् अपना मक्कार होना माना था।

उनके पहले गवाह हैं पण्डित S. (शिव) N. [नारायण] अग्निहोत्री और दूसरे चर्च मिशनरी सुसाइटी मथुरा के पादरी रेवरेण्ड पी० एम० जेन्कर [P. M. Zenkar] इन दोनों की साक्षी के विषय में पादरी फ़रकुहार स्वयम् मानते हैं कि "The evidence is not absolutely conclusive साक्षी सर्वथा निश्चयात्मक नहीं है। परन्तु "दयानन्द के वेदभाष्य के विचित्र रूपक के साथ मिला कर एक निर्मल विद्यार्थी पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है।" क्या सच्चे विद्यार्थी के लक्षण पक्षपाती पादरी ग्रिसवोल्ड में घटते हैं? जिस के पाश्चात्य गुरुओं ने अपने लेखों में यह दावा किया हो कि वेद मन्त्रों के अर्थोंको प्राचीन ऋषियों की अपेक्षा वे उन्नीसवीं सदी के "अयोगी म्लेच्छ" अधिक समझ सकते हैं, उन के चेले ग्रिसवोल्ड और उन के पोते फ़रकुहार को कोई बुद्धि हीन पुरुष ही पक्षपातहीन समझेगा। मैं प्रमाण शून्य दावा नहीं करता। मैक्समूलर की वैदिक योग्यता के एक नमूने से ही सिद्ध हो जायगा कि वेदार्थ में इस की पथ दर्शकता कहां तक विश्वास के योग्य है।

अपनी पुस्तक (Hymns of the Rigveda) में प्रोफ़ेसर मैक्समूलर प्राचीन ऋषियों की भूलें दिखलाते हुये पृ० १०१–१०२ पर लिखते हैं 'साधारण छन्दों केलिये जो शब्द त्रिष्टुभ और अनुष्टुभ प्रयोग किये जाते हैं प्रायः एक धातु स्तुभ से बनाये जाते हैं जिस के अर्थ हैं to praise स्तुति करने के; मेरी सम्मति में उन को उस स्तुभ धातु से बनाना चाहिये जोकि ग्रीक (यूनानी) भाषा में सुरक्षित है। न केवल कठिन वा कठोर आघात के अर्थों में प्रत्युत उस धातु में जिस में से एक दूसरा शब्द निकलता है जिस के अर्थ हैं पैर से पीटे गये वा दबाये गये अंगूर..... और एक दूसरा शब्द जिस के अर्थ हैं हिलाना व झिड़कना इत्यादि। संस्कृत में इस की शकल का स्तम्भ धातु है जिस के अर्थ दबाने, फिर दृढ़ करने, बलिष्ठ करने के हैं।"

ऊपर की उधेड़ बुन और संस्कृत शब्द के लिये यूनानी धातु ढूँढ़ने का यत्न प्रोफ़ेसर मेक्समूलर ने क्यों किया? उक्त प्रोफ़ेसर महाशय इस का उत्तर यों देते हैं– "इसलिये मैं त्रिष्टुभ के असली अर्थ ट्रिपोडियम (यह कल्पना करके कि यह शब्द समास है, ट्री और पिस का जो होरेस कवि के निम्न लिखित वाक्य में आया है—

'पी पुल्सी ट्रीपीडीरेरम' मैं इसका नाम तीन पदी रखता हूं, इसलिये कि शब्दों के अन्तिम तीन अक्षर जो कि इस छन्द की विशेषता है और इसका असली घुमाव कहा जा सकता है; प्रत्येक घुमाव के पश्चात् उस पर स्पष्ट प्रकार से ठप्पा लगाया गया है। यदि मेरा वर्णन त्रिष्टुभ के नाम के विषय में अर्थात् त्रिपदी ठीक है, तो इसका कृत्रिम घटना के स्थान में स्वाभाविक क्रम के साथ अधिक सम्बन्ध है। स्तभ्स्तुतौ धातु से त्रिष्टुभ बनाने के स्थान में प्रोफ़ेसर साहिब ने यूनानी धातु की शरण क्यों ली ? इसलिये कि वेदों को बच्चों की बलबलाइट और उसके मन्त्रों को प्रथम जंगली आदमियों के नाच के साथ ताल सम का काम देने वाले साज़ सिद्ध करने का उद्देश्य था। प्रोफ़ेसर मैक्समूलर लिखते हैं—

(यह त्रिष्टुप् छन्द) एक नाचका साथ देने के लिये थी जिस में आठ पग तक खुले एक ओर बढ़कर तीन पगों मे लौटते थे जिसमें कि दूसरा पग बल से डाला जाता था और जो कि इस कारण गीत वा बोलने में स्वभावतः एक लम्बे अक्षर को साथ रखता था"।

यहां मैक्स म्यूलर का सारा परिश्रम सफल है। केवल

अंग्रेज़ों के ही पुरुषा वृक्षों की छाल पहिर कर नहीं नाचा करते थे, भारत वर्षीय आर्य्यों के बड़े भी (Savages) ही थे। परन्तु समय आया जब कि मैक्समूलर को मानना पड़ा कि वेद में ऐसे विचार भरे पड़े हैं जो कि ईसा की उन्नीसवीं सदी के से मालूम होते हैं। और स्वर्ग वासी डाक्टर वालस से शिरोमणि तत्त्ववेत्ताओं ने स्पष्ट मान लिया है कि वैदिक ज्ञान की मौजूदगी में वह सिद्धान्त संदिग्ध होगया है कि ज्ञान क्रमशः उन्नति करता है। संसार उन्नति कर रहा है और योरुप तथा अमेरिका के उदार दार्शनिक पदार्थवेत्ता वेदों की शिक्षा के समीप आरहे हैं। परन्तु इसाई पादरी कूप मण्डूक की तरह अपने पक्षपात के आसन से हिलने का भी नाम नहीं लेते। जब पादरी फरक्कुहार के पथ दर्शक ही भ्रम में फंसे हैं, तो "अन्धे नैवनीयमाना यथान्धाः"—की लोकोक्ति के अनुसार वह दूसरों को मार्ग क्या दिखाएंगे। तब अग्निहोत्री और जैन्कर की साक्षी का मूल्य ही क्या रह जाता है? अग्निहोत्री की तो एक लघु पुस्तक का हवाला दिया गया है जो उसने १८९१ में "पण्डित दयानन्द की पोल" खोलने के लिये लिखी थी उसी में अग्निहोत्री ने कुछ मरों और जीते पुरुषोंसे सुनाहुवा समा-

चार दिया था कि उन लोगों के साथ बात चीत करते हुवे दयानन्द ने माना कि वेद को उसने हिन्दुवों को फंसाने मात्र के लिये आड़ बना रक्खा है, वास्तव में उसका वेदों पर विश्वास नहीं। इसी प्रकार मथुरा के पादरी जैन्कर ने बतलाया कि जब सं १८८४ वा १८८५ वा १८८६ में वह वृन्दावन में क्रिश्चियन मिशन का प्रचार कर रहे थे तो स्थानीय आर्य्यसमाज के लीडर से उनकी लम्बी बात चीत हुई। दूसरे दिन पादरी जैन्कर उस आर्य्य लीडर के घर मिलने गये और दूसरी लम्बी बात चीत की। इस बात चीत के विषय में पादरी फ़रकुहार ने यह नहीं लिखा कि पादरी जेन्कर ने उनसे स्वयं वर्णन की। वह केवल यह लिखते हैं कि वह उस बात चीत की रिपोर्ट को उद्धृत करते हैं। पादरी फ़रकुहार ने वह उद्धरण कहां से लिया है इस का पता मैं देना चाहता हूं। पादरी फ़रकुहार ने अपनी पुस्तक का मसाला सं. १९३३ में इकट्ठा किया; उसी समय पादरी जैन्कर के लेख का उद्धरण किया होगा। मैंने वह लेख सं १९०९ ई० में एक गुप्त सरकारी रिपोर्ट में देखा था। गुप्त रिपोर्ट और पादरी फ़रकुहार का उद्धरण दोनों नीचे देता हूं।

(१) सरकारी रिपोर्ट में लिखा था।

Mr. Zenkar records that between 1884—1886, when at Bindraban, he ascertained that Dayananda's real object was to obtain for India all the advantages which western civilization has conferred on the nations of Europe but that being fully acquainted with the character of his Hindu countrymen, he knew that they would hardly be willing to accept as a guide one who would present this as the sole aim and object of all the training they would have to undergo. He therefore cast about for an expedient to gild the pill and thought he had found it in the cry—"Let us return to the pure teaching of the Vedas."

अब पादरी फ़रक़ुहार का उद्धरण इससे मिलाइये।

My informant stated that Dayanand's rea object was to obtain for India all the advantages which Western civilization has conferred on the nations of Europe and America. But, being fully acquainted with the character of his Hindu fellow countrymen, he knew they would hardly accept as a guide one who presented this as the sole aim and object of all the laborious training they would have to undergo. He therefore cast about for an expedient to gild the pill and he thought he had

found it in the cry. "Let us returd to the pure teaching of the Vedas."

दयानन्द को इस प्रकार का मक्कार बतलाने वाले शिवनारायण अग्निहोत्री और पादरी जेन्कर के अतिरिक्त एक ब्राह्मण देवता भी थे। चौथा ऐसा कोई कहने वाला नहीं मिला। पादरी जेन्कर और अग्निहोत्री ने दूसरों की साक्षियां पेश की हैं, स्वयं सीधी साक्षी नहीं देते क्योंकि नवशिक्षित लोग हिकमत से बगला पकड़ा करते हैं, ब्राह्मण देवता ने निरालूण' पथ दिया था। उनकी कहानी भी मनोरंजक है जिसे २४ मागशीर्ष सं० १९४६ के सद्धर्म प्रचारक से उद्धृत करता हूं। स्थान राजा साहेब मण्डी का कैम्प था और स्वर्गवासी राजा उग्रसेनजी ने आर्य्य समाजिकों और हिन्दू धर्म सभा वालों को धर्म चर्चा के लिये बुलाया हुवा था। "बात चीत होते २ पण्डित देवकीनन्दन ने कहा कि स्वामी दयानन्द ने मेरे सामने माना था कि यद्यपि मैं बाहर से पुराणों का खण्डन ईसाइयों से बचाने को करता हूं, तथापि मेरा निज मत मूर्ति पूजादि ही है। लाला मुन्शीराम ने प्रश्न किया कि कोई और भी था उत्तर दिया कि स्वर्गवासी सर्दार विक्रम सिंह आहलू वालिया तथा दो एक उनके भृत्य (जिनका

नाम मालूम नहीं) मौजूद थे। इस पर एक सिक्ख साधु जी, जो अकस्मात् तमाशा देखने बैठाये गये थे और जिनको हम अब तक नहीं जानते, बोले कि यह पण्डित झूठा है, मैं स्वामीजी से मिला, वह बड़े सच्चे आदमी थे।"

जैसा पण्डित देवकीनन्दन का अपवाद था उससे ज़ेन्कर और अग्निहोत्री का कम नहीं। देवकीनन्दन को अपनी आजीविका की चिन्ता थी इसलिये उसने यह घड़न्त की। आवश्यकता है कि जो झूठ ज़ेन्कर और अग्निहोत्री ने २४ वा २५ वर्ष से फैला रक्खा है उसका प्रेरक कारण भी मालूम किया जाय।

पादरी ज़ेन्कर की साक्षी का मूल्य

पादरी ज़ेन्कर कौन है। यह एक जर्मन पादरी है। ३५ वर्ष से मथुरा में ईसाई मत के प्रचार का काम कर रहा है। युद्ध के कारण वह इस समय मथुरा छावनीमें नज़र बन्द है-ऐसा समाचार मुझे अभी मथुरा के पत्र से मिला है। क्या जर्मन की साक्षी इस समय तक स्वीकार होती रहेगी? जिन जर्मनों ने ४० वर्ष अन्य देशों में रहकर भी विश्वासघात किया उन के एक अनुभवी नीतिमान् पादरी का अमल क्या सन्देह से देखे जाने योग्य नहीं है? कौन कह

सकता है कि आर्य्यों में जीवन के चिन्ह देख कर इस जर्मन दूत ने इसलिये ब्रिटिश सरकार को इन के विरुद्ध करने का यत्न किया हो जिससे वास्तविक शक्तियों से अंग्रेज़ी सरकार कुछ काम न लेसकें। यह जर्मन पादरी की साक्षी तो ऐसी है कि इस का मूल्य दो कौड़ी भी नहीं। अग्नि होत्री ने नाम तो दिये थे, चाहे अधिकतः मरोंके ही क्यों नहों। परन्तु ज़ेन्कर ने तो अपने सम्वाददाता, स्थानीय आर्य्य लीडर का नाम गुप्त रिपोर्टों तक में नहीं दिया। तब इस साक्षी को कोई भी न्याय शील एक क्षण के लिये भी विचारणीय नहीं समझेगा।

अब रह गये पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री और

अग्निहोत्रो के कुटिल आक्षेपों का प्रेरकहेतु

सो उनका असली जीवन चरित्र जानने वाले उनके द्वेष का कारण समझ सकते हैं। यों तो जिन २ मत वादियों के चुङ्गलों से उनकी सरल, भोली सम्प्रदाय को निकालने के लिये दयानन्द के उच्च आत्मा ने काम किया वे सभी उनसे रुष्ट थे, परन्तु शिवनारायण से कुछ ऐसा वैयक्तिक वर्ताव हुवा जिसे एक अभिमानी पुरुष कभी

खण्डन नहीं कर सकता। मैं शिवनारायण अग्निहोत्री के सम्बन्ध में कुछ घटनाओं को उद्धृत कर देता हूं जिससे पाठकों को ज्ञात होजायगा कि किस प्रकार क्रमशः अग्नि होत्री के विरोध की भूमिका बंधी।

[१] "१९ अप्रैल १८८७ ई० को स्वामी दयानन्द जी लाहौर में पधारे—प्रथम पब्लिक व्याख्यान स्वामी जी का बावली साहिब में २५ अप्रैल, १८८७ .... को ६ बजे शाम से ८ बजे तक हुवा जिसके सुनने के लिये बेशुमार लोग जमा हुवे ...... इसके बाद दूसरा व्याख्यान स्वामीजीका बावली साहिब में शुक्र वार २७ अप्रैल १८८७ को हुवा जिसमें उससे भी अधिक रौनक़ हुई....(महर्षि दयानन्दका बृहद्‌जीवन चरित्र, उर्दू पंडित लेखराम लिखित, पृ० २९८, २९९)

इन व्याख्यानों का विस्तृत वर्णन पृ०२९९ से ३०२ तक देकर पृ० ३०२ पर निम्न लिखित वृत्तान्त है—

"लाहौर में आने से दूसरे दिन २०अप्रैल १८८७ई० को पं० शिवनरायण अग्निहोत्री, एडीटर, रिसाला बिरादर-ए-हिन्द (यह मासिक पत्र उन दिनों ब्राह्म-समाज का आर्गन था और अग्निहोत्री उन दिनों ब्रह्म-समाजी थे।) ने स्वामीजी के साथ वेदों के ईश्वरीय

वाणी होने पर वार्तालाप की और प्रायः स्वामीजी के पास जाते और वार्तालाप किया करते थे।

एक दिन पं० जी ने एक फूल लाकर भेंट किया। स्वामीजी ने कहा कि यह तुम क्यों तोड़ लाये? पं० शिव-नारायण ने कहा कि आप के वास्ते लाया हूं। कहा कि तुमने बुरी बात की! पूछा कि किस तरह? उत्तर दिया कि प्रथम तो जितने काल तक सुगन्ध फैलाने के लिये प्रकृति ने उत्पन्न किया था उससे पहले तुमने तोड़ डाला, द्वितीय अब शीघ्र सड़ जायगा, और दुर्गन्ध फैलायगा। तृतीय यदि स्वाभाविक अवस्था में रहता तो बहुत आदमियों को इस से लाभ पहुंचता। चतुर्थ स्वयं गिरता तो सूख कर गिरता और दुर्गन्ध न फैलाता प्रत्युत खाद बन जाता। इस से पण्डित जी और श्रोतागणों को बड़ा लाभ हुवा" ॥

(३) "बावली साहिब के पश्चात् स्वामीजी ने दो व्याख्यान ब्राह्म मन्दिर लाहौर [अनारकली] में दिए। ब्राह्म समाज के लोगों का ख़याल था कि स्वामीजी ब्राह्मधर्म का उपदेश करेंगे परन्तु जब ठीक ब्राह्ममन्दिर के अन्दर एक वेदों के सत्य और ईश्वर कृत होने पर और दूसरा आत्मा के आवागमन [पुनर्जन्म] पर व्याख्यान दिया

तब ब्राह्मसमाजियों की आंखें खुलीं, और सोचने लगे कि यदि हम ऐसा जानते तो इनके व्याख्यान ब्राह्म मन्दिर में न होने देते। अतः ऐसा विचार कर आगे को उनका वहां व्याख्यान देना स्वीकार न किया, प्रत्युत उसी समय से ब्राह्म लोग मनसे विरोध करने लगे" पृ० ३०२

स्वामी दयानन्द के आनेसे पहिले लाला साईंदास, लाला जीवनदास और बाबू शारदा चरण भट्टाचार्य ब्राह्म समाज के सभासद थे। जब ब्राह्म समाजियों ने पक्षपात में फंसकर स्वामीजी के व्याख्यान ब्राह्म मन्दिर से बन्द करादिये तो इन चारों ने ब्राह्मसमाज को अन्तिम नमस्ते कहदी। स्वामीजी के आतिथ्य में ब्राह्मसमाज ने भी कुछ व्यय किया था उसका ज़िक्र कुछ संकुचित हृदय ब्राह्मओं ने किया तो इन महाशयों ने वह धन सामने फेंक दिया।

(४) जुलाई १८८७ ई० के बिरादर-ए-हिन्द में स्वामी दयानन्द के काम की बहुत प्रशंसा छपी है, जिसमें पहिले पहल झलक अविश्वास की है इसलिये वह लम्बा उद्धरण यहां देना आवश्यक समझा गया है—

"विचार उनके प्रायः उदार और बहुत सा भाग उनका इस समयके विद्वानोंके विचारों के अनुकूलहै। उनका

मस्तिष्क बड़ा ही उन्नतिशील ज्ञात होता हो और इसलिए यद्यपि उन्होंने संस्कृत भाषा के अतिरिक्त अन्य किसी भाषा का साहित्य नहीं पढ़ा तथापि एक इसी साहित्य और प्रकाशमय शिक्षित पुरुषों के सङ्ग से उन्होंने अपने विचारों को ऐसा स्पष्ट और उच्च बना लिया है कि वह न केवल अपने सहयोगी पण्डितों के पक्षपाती संकुचित विचारों की अवस्था से निकल कर एक सच्चे विद्वान् और प्रकाश युक्त पण्डित का आदर्श बन गए हैं प्रत्युत हमारे देशके आम अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोगों के विचारोंसे भी कुछ श्रेष्ठता रखते हैं। इस मनुष्य के दिल में ज़ाहिरा जातीय सहानुभूति और जातीय सुधार का बहुत बड़ा जोश (उत्साह) मालूम होता है, *यद्यपि इस समय यह कहना कठिन है कि वह जोश कहां तक स्वार्थ से ख़ाली और उस [स्वार्थ] की मिलावट से शुद्ध है। क्योंकि इस का प्रमाण केवल तजुरुबे पर निर्भर है। और उसका दिखलाने वाला केवल समय है;* तथापि इस के व्यक्तित्व से, जहां तक हम इस समय अनुमान कर सकते हैं, देश में बहुत कुछ उन्नति और सुधार की आशा है। मत सम्बन्धी सुधार की दृष्टि से (बुतपरस्ती) मूर्ति पूजा का यह बड़ा शत्रु है। अतः उन लोगों मेंसे जो मूर्ति पूजा की जड़ उखेड़ने में इस समय प्रयत्न कर रहे हैं इस को इस समय का *बड़ा मूर्ति भंजक* कहें तो भी अनु-

चित न होगा। ब्राह्म समाज की मज़हबी शाखा के पक्ष में तो, जिस का सिद्धान्त प्रत्येक प्रकार की मूर्तिपूजा को दूर करने और संसार में एक परमेश्वर की पूजा को फैलाना है, यह व्यक्ति एक ऐसा सहायक देवता है कि जिस की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। केवल धार्मिक संशोधन का ही यह इच्छुक नहीं प्रत्युत सर्व जातीय बुराइयों को, जो बालविवाहादि के रूप में देश में फैल रही हैं उन को सुधार को भी दृष्टि में रखता है। स्त्री शिक्षा और उनकी स्वतन्त्रता का विशेष इच्छुक है और उस की भी यही सम्मति है कि जब तक उन में शिक्षा न फैलेगी, उन्हें ज़नाने के बन्धन से मुक्ति प्राप्त न होगी, तब तक इस देश में सन्तोषजनक उन्नति की आशा करना व्यर्थ है। सारांश यह है कि *अविद्या और पक्षपात को दूर करना, विद्या का प्रचार करना, जातीय ऐकता उत्पन्न करना, और उसे साधारण सभ्यता के रूपमें लाकर एक श्रेष्ठ आदर्श के मनाने में प्रयत्न करना इस व्यक्ति का मुख्य तथा विशेष उद्देश्य है।* पृ० ३२५

परन्तु कुछ समय के पश्चात् अग्निहोत्री जी के इन विचारों में भी परिवर्तन आया। उस परिवर्तन का कारण आगे पढ़िये।

(५) "एक दिन ..... भाई दित्तसिंह स्वामी जी से वेदान्त मत पर विचार कर रहे थे और अग्नि होत्री साहब भी उस समय मौजूद थे। विचार के बीच में पण्डित शिव नारायण बोल उठे कि स्वामी जी से जवाब नहीं आया और वह हार गये। इस पर स्वामीजी ने पण्डित जी से पूछा कि भला आप बतलाइये कि हम ने क्या कहा? पण्डित जी ने कुछ वर्णन किया। तब स्वामी जी ने भाई दित्तसिंह से पूछा कि क्यों हम ने यही कहा। भाई दित्तसिंह ने कहा कि नहीं आपने यह नहीं कहा, पण्डित जी ने नहीं सुना। फिर स्वामी जी ने पण्डित जी से पूछा कि भला बतलाइए तो सही कि भाई दित्तसिंह ने क्या कहा था। पं० शिवनारायण ने फिर कुछ वर्णन किया। भाई दित्तसिंह ने कहा कि यह मैंने नहीं कहा था। उस समय स्वामी जी ने पंडित शिवनारायण से कहा कि आप बिना सोचे समझे सम्मति दे देते हैं; इसपर पंडित जी रुष्ट हो गए" (पृ० ३०८)

यहां यह जानना आवश्यक है कि भाई दित्तसिंह उसके पश्चात् लाहौर आर्य्य समाज के सभासद बनगये थे और जब तक भाई जवाहिर सिंह को अमृतसर की गद्दी संभालने का मद नहीं चढ़ा था, तब तक बराबर

आर्य्य समाज लाहौर की वेदी से वैदिक धर्म्म का मन्डन और असत्य मतों का खन्डन करते रहे।

(६) "डाक्टर नत्थूराम.....पटियाला ने बतलाया कि हमारे सामने एक दिन शिवनारायण ने आकर शङ्का की कि स्वामी जी सामवेद में उल्लू की कहानी है, आप किस तरह कहते हैं कि वेद में कोई कहानी नहीं है। स्वामी जी ने कहा—नहीं,। पंडित जी ने फिर कहा, 'अवश्य है आप क्यों इन्कार करते हैं?' तब स्वामी जी ने सामवेद उठाकर उसके हाथ में दे दिया कि 'यदि है तो अवश्य निकाल कर सबके सामने बतलाइए' पंडित जी पुस्तक लेकर कुछ देर तक ढूंढ़ते रहे, फिर शान्त को कह दिया कि इसमें तो नहीं मिलती।

इसपर स्वामी जी तो मौन हो रहे परन्तु और लोगों ने बहुत लज्जित किया।"

पिछली घटना ने तो सितम ढा दिया और उसके पश्चात् अग्नि होत्री की दशा आर्य्यसमाज के विषय में पागलों की सी हो गई। ब्राह्मसमाजी एकेश्वर वादी होता हुआ जब ब्रह्मवादी की उपाधि स्वयम् धारण की थी तब भी उस को दयानन्द और उनके स्थापित किये आर्य्य समाज के ही स्वप्न आते थे; जब उनसे

विवाद पर विरोध होने से ब्राह्मसमाज को छोड़ देव-समाज स्थापित किया तब भी परमदेव को यही डांट बतलाता रहा कि आर्य्यसमाजियों को शीघ्र नष्ट करदें और जब परमदेव को भी जवाब देकर विशुद्ध नास्तिक मत ग्रहण किया तब भी सी० आई० डी० को आर्य-समाज के विरुद्ध भड़काना इसने अपना पेशा बना रक्खा है। इसका प्रमाण आगे देखिये —

(7) Extract from the Census Report of India. 1891. Volume XIX (The Punjab and its Feudatories, Part 1), by E. D. Maclagan.

PAGE 120.—The Dev Dharmis—"The Arya Samaj has been violently attacked on all sides, by the orthodox party on the one hand and by the Christian missionaries on the other; but the fierest opponents of the Aryas are to be found in the little sect of the Dev Dharm.....

The opposition between the Dev Dharmis and the Arya Samaj is said to have commenced in a personal altercation between the founders of the two schools; but however this may be, the younger sect is very bitter in its enmity against the elder. The Arya leaders are accused of teaching immoralities, of embezzling funds, and so forth: the police have had to be called in to keep the two parties from fighting, and the more enthusiastic on either side have begun to indulge in an acrimonious pamphlet warfare.

मनुष्य गणना की रिपोर्ट बाबत १८९१ ई०—

" आर्यसमाज पर चारों ओर से प्रचन्ड आक्रमण हुए हैं, सनातनी एक ओर और ईसाई मिशनरी दूसरी ओर; परन्तु सबसे भीष्ण विरोधी आर्य्यों के, देव धर्म्मियों के छोटे पंथ में पाए जाते हैं.....कहा जाता है कि देव-धर्मियों और आर्य समाजियों का विरोध दोनों मतों के प्रवर्तकों के परस्पर के विवाद से आरम्भ हुवा था, परन्तु चाहे कुछ ही हो कनिष्ठ पन्थ (देवधर्म) ज्येष्ठ (आ० स०) के विरुद्ध शत्रुता में बड़ा ही निष्ठुर है । आर्यसमाज के लीडरों पर दुराचार सिखाने और ग़बन करने आदि के अपराध लगाए हैं। दोनों दलों को लड़ने से रोकने के लिये पुलिस को बुलाना पड़ा है और दोनों ओर के अधिक जोश वालों ने लघु पुस्तकों के द्वारा तीक्ष्ण युद्ध आरम्भ कर दिया है । "

ऊपर की घटनाओं के विषय में मिष्टर मेक्लेगन से बढ़ कर निष्पक्ष साक्षी कहां से मिल सकती है।

क्या पादरी फ़रकुहार के पास कोई पादरी इन नई साक्षियों को पहुंचायगा और क्या स्वामी दयानन्द के विषय में वह अपनी सम्मति बदलेंगे ?

पादरी फ़रकुहार ने जिन घृणित साधनों से दयानन्द

को मक्कार सिद्ध करने का यत्न किया, उस से ईसाई पादरियों की अन्तरीय अवस्था का कुछ पता लग सकता है। इस से पता लगता है कि उच्च से उच्च चरित के भी मतवादी स्वसम्प्रदाय की रक्षा तथा उन्नति के लिये कहाँ तक आत्मा का हनन कर सकते हैं! परमेश्वर आर्य्य समाज को साम्प्रदायिक गढ़े में गिरने से बचाए, यह मेरी हार्दिक इच्छा रहा करती है।

अपने आत्माको ज़ेन्कर और अग्निहोत्री की साक्षियों से सन्तुष्ट करके कि दयानन्द मक्कार था और कि इसलिये उस का वेदार्थ ठीक नहीं हो सकता, पादरी फ़रकुहार ने आर्य्य-समाज के दश नियमों का पृष्ठ १२० पर, अंग्रेज़ी अनुवाद दिया है, जिस के अनन्तर, यह लिख कर कि इन में ब्रह्म विद्या सम्बन्धी समाज के सारे सिद्धान्त नहीं आजाते उन्होंने समाज के प्रथम वर्णन किए सिद्धांत फिरसे गिन दिये हैं जो शायद किसी निष्पक्ष मनुष्य गणना की रिपोर्ट वा किसी अन्य निष्पक्ष लेख से लिये गये हैं। वेद का अधिकार सब को देते हुए आर्य्य तीन (ब्रह्म, जीव, प्रकृति) कोअनादि मानते हैं। वे पुनर्जन्म और कर्म फल पर विश्वास रखते हैं, और मुक्ति निरन्तर पुण्य कर्मों का फल समझते हैं। यहांतक तो पादरी साहेब ने

ठीक सारांश इन विषयक आर्य मन्तव्यों का दिया है परन्तु आगे लिखते हैं-"और जीवात्मा, पुनर्जन्म से मुक्त होकर भी, परमात्मा में लीन नहीं होता। यह ठीक है कि आर्य्य अद्वैत वादियों के ब्रह्म रूप होने और बौद्धों के निर्वाण मानने वाले नहीं परन्तु उनका यह सिद्धांत अवश्य है कि मुक्तात्मा परमात्मा में स्वेच्छासे खुले विचरते अर्थात् ब्रह्म मेंही स्थित रहते हैं।"

फिर पादरी साहेब ने आर्य्य समाज की स्थिति अवतारवाद, मूर्त्ति पूजा और यज्ञ विषय में ठीक वर्णन की है, और हवन का यथार्थ बतला कर मृतक श्राद्ध और तीर्थ यात्रा सम्बन्धी उनके विचार भी ठीक वर्णन कर दिये हैं। लेख शैली से ज्ञात होताहै कि इन में बहुत सिद्धांतों के साथ पादरी साहेब का मत भेद है परन्तु उन्होंने इन सिद्धांतों का खण्डन करने का साहस मात्रभी नहीं किया; हां समाप्ति पर वही नियोग का विषय सामने लाकर उसे घृणित बतलाया है और साथ ही लिखा है कि समाजके बहुतसे सभासद इस Most Immoral legislation (बड़ेही व्यभिचारके नियम)का निराकरण करना चाहतेहैं। मुझे तो कोई आर्य्य समाज का सभासद ऐसा नहीं मालूम होता जिसने पादरी फ़रकुहार से नियोग विषय में

इस प्रकार की बात चीत की हो; सम्भावना यह है कि लाला लाजपतराय का इस विषय का लेख फ़रकुहार महाशय ने मिस्टर ओमन की पुस्तक में पढ़ा हो।

जब सं० १९०५ में श्री लालाजी इङ्गलिस्थान में थे तो गवर्नमेंट कालिज लाहौर के भूत पूर्व रसायनोपाध्याय ओमन् साहेब[Mr. Oman]ने लाला हंसराजके लेखानुसार अपनी पुस्तक [Cults,customs and suprestitions of India] के संशोधित संस्करण के लिए लाला लाजपतराय से आर्य्यसमाज विषयक बहुत प्रश्न कियेथे जिनको उत्तरसहित, उन्होंने अपनी पुस्तक के सन् १९०८ ई० वाले सस्करण में दिया है। मिस्टर ओमन लिखते हैं—

"I reproduce below the questions I put to Lala Lajpat Rai at one of our interviews, and the answers thereto, as I believe the information thus obtained is of value for the comprehension of the aims and methods of the Arya Samaj."

लाला लाजपतरायजी ने तो भोलेपन से, बिना अपने सिद्धांतों का सच्छास्त्रों द्वारा ठीक अध्ययन किये, मन माने उत्तर देकर एक अंग्रेज़ को प्रसन्न कर दिया परन्तु उसका प्रति फल आर्य समाज को भुगतना पड़ता है। ओमन साहेब ने प्रश्न किया—

VIII—"The teaching of Swami Dayanand in regard to Niyoga is, I understand, taken by all his followers as an essential part of the master's doctrine. Am I right?"

यदि लाला लाजपतराय जी को स्वयम् कुछ सन्देह था वा नियोग को ठीक न समझते थे, तो ऐसा ही कह देते परन्तु आपने उत्तर दिया कि समाज नियोग को आवश्यक सिद्धांत नहीं समझता—The Samaj does not consider Niyoga an essential doctrine—यह प्रसन्नता की बात है कि लालाजीने अपनी नई किताब में यह मानते हुए भी कि इस विषय में आर्य्य समाजियों का परस्पर मत भेद है अन्य सम्प्रदायों के आक्रमणों से आर्य्य समाज की रक्षा करने का यत्न किया है, परन्तु फिर भी उनकी संशयात्मक लेखशैली से विरोधियों को आधार मिल ही जाता है। अभी मार्डन रिव्यूमें लालाजीकी पुस्तक की समालोचना निकली है जिस में समालोचक ने लालाजी पर यह दोषारोपण किया है कि उन्होंने वेद के निर्भ्रांत होने पर कुछ भी नहीं लिखा और इस से यही ब्राह्मसमाजियों वाला परिणाम निकाला है कि आर्य्य समाजी केवल दिखाने के लिये वेद पर अपना विश्वास बतलाते हैं।

अस्तु; यह तो प्रकरण में असम्बद्ध बात आगई, और

इस आक्षेप को दूर करने का प्रयत्न भी शीघ्र आरम्भ होगा। वेद क्या है और उसका स्थान मनुष्य जन्म की सफलता के लिये कहां होना चाहिये, उस वैदिक ज्ञान का उपदेश क्या है? और उस उपदेश में सचाई कहां तक है? इन सब प्रश्नों के उत्तर आर्य्य समाज की ओर से दिए जारहे हैं, परन्तु जब तक इस विषय में कोई स्थिर ग्रंथ न बनेगा तब तक कुटिल विपक्षी, अन जानसे बन कर, आक्षेप करते ही जायंगे।

नियोग क्या है और आपत्काल के धर्मों में उसका कैसा उच्च स्थान है? यह समय आने पर अलग बतलाया जायगा। परन्तु पादरी फ़रकुहार का यह लिखना कि समाज ने अन्य मतों के खण्डन में अपने समाज के प्रवर्त्तक का अनुकरण किया है और कि जहां आर्य्य सामाजिक जाते हैं वहां [Slander, passion, और unfair methods] सुनाई देते हैं, कैसा निर्मूल है, इसका पता उनकी पुस्तक से ही लग जाता है। जितनी-मीठी और कड़वी दोनों प्रकार की-गालियां दयानन्द और आर्य्य समाजिकों को पादरी फ़रकुहार ने दी हैं इतने कटु भाषण शायद आर्य्य समाज ने दश वर्ष में भी न किये होंगे।

पादरी फ़रकुहार कालिज पार्टी के आर्य्यसमाज के एक साप्ताहिक अधिवेशन में गये थे, उसका हाल भी गुप्त कटाक्षों से भरा हुआ है। दयानन्द कालिज का हाल पादरी फ़रकुहार ने लाला लाजपतराय के लेख से लिया है। गुरुकुल का हाल पादरी हालेण्ड के उस लेख से लिया गयाहै, जो उक्त पादरी साहेबने 'ईस्ट ऐन्ड वेस्ट' नामी मासिक पत्र में छपवाया था। वहां और कुछ कटाक्ष के लिये नहीं मिला तो लिख दिया कि दयानन्द का भाष्य पढ़ा कर साहित्य की सार गर्भित शिक्षा कैसे दी जायगी? यह सारा विष फैला कर पादरी फ़रकुहार आर्य्य समाज की निष्पक्ष आलोचना करते हैं—

" पंजाब और संयुक्त प्रान्त में समाज ने बहु मूल्य काम, एकेश्वर वाद की साक्षी, मूर्त्ति पूजा और अन्ध-विश्वास के विरोध तथा अपने शिक्षा सम्बन्धी कार्य्य से किया है। जाति भेद, बाल विवाह, पोपडम, तीर्थ यात्रा और धर्म के नाम पर जो आत्मपीड़ा दी जाती है, इन सब का खंडन ठीक है यद्यपि समाज के सभासद् अब तक जाति बन्धन से बंधे हुवे हैं और बाल विवाह का त्याग नहीं कर दिये हैं। इन बिषयों में काम की अपेक्षा बकवास अधिक है। " इस लेख से मालूम होता है कि

जो बीसियों विवाह जाति बन्धन को तोड़ कर पंजाब में हुवे हैं उनके विषय में जानने की पादरी साहेब ने कोशिश भी नहीं की और अपने प्रयत्न की सीमा पुलिस रिपोर्टों और कालिज पार्टी के व्याख्यानों से बाहर नहीं बढ़ाई। यदि कालिज पार्टी के सभ्यों से भी वह सीधे मिलते तो उन्हें मालूम हो जाता कि पंजाब में कम से कम इस समय सौ में नव्वे आर्य्य युवक २५ से पहले विवाह नहीं करते और आर्य्य गृहों की कन्यायें तो बीस बाईस वर्ष की आयु तक भी कुमारी बैठी रहती हैं, यदि सदृश गुण, कर्म, स्वभाव युक्त वर न मिले। जिन सिद्धान्तों पर बिना खण्डन किये पादरी फ़रकुहार ने कुटिल कटाक्ष किये हैं उनका समर्थन कभी फिर किया जायगा। यहां केवल उस पक्षपाती पादरी के (जो अपने आपको हिन्दुओं का मित्र और प्रशंसक सिद्ध करता है) अन्तिम वचन देकर इस लेख माला को अपने अन्तिम बचनों सहित समाप्त करता हूं। पादरी फ़रकुहार लिखते हैं—

" पिछले दिनों में समाज की बड़ी बढ़ती आशा दिलाती है कि इसकी और बढ़ती होगी। गत मनुष्य गणना जतलाती है कि इसकी संख्या अब २,४३००० है, और सभासदों का जोश खुले दिल से सामाजिक संस्थाओं की कोषपूर्ति से सिद्ध होता है। परन्तु यह क्यों है ?

दयानन्द की सब भारतीय वस्तुओं की प्रशंसा और उस का वेदों और पुनर्जन्म का समर्थन बहुत लोक प्रिय सिद्ध हुवा है"। धन्य हो पादरी महाशय और धन्य है तुम्हारा न्याय! जब तुम्हारी सम्मति में पुनर्जन्म एक अहिन्दू विश्वास है तो वह हिन्दुओं में लोक प्रिय कैसे हो सकता है? और यदि भारतीय अपने पूर्वजों के गौरव का मान करें तो क्या यह भी पाप है? यदि पादरियों के हाथमें भारतवर्ष के शासन की बागडोर होती तो शायद यहां के निवासी तड़प २ कर मर जाते! यह वही मिश्नरी हैं जिन के विषय में राजा हरनामसिंह से विश्वासी सदा चारी ईसाई को भी कहना पड़ा—"इस समय मिशन की नीति में शिक्षित हिन्दोस्तानी ईसाइयों के लिये कोई स्थान नहीं है। उसे कोई अधिकार नहीं मिले हुवे और उसे निर्वाह मात्र भी वेतन नहीं मिलता; साथ ही स्वतन्त्र सम्मति को मिश्नरी बुरा मनाता और दूसरों की सलाह को सावधानी से नहीं सुनता। कभी २ ऐसा होता है कि सब कोई पादरी-विभिन्न-पुरुष चर्च के काम में भाग लेना चाहते हैं तो जिस उत्साह की आशा उन्हें होती है वे नहीं मिलते, जोकि समानता की अवस्था में अवश्य मिलने चाहिये थे। इसके कारण क्या हैं? मेरी सम्मति में दो

मुख्य कारण हैं—(१) जातीय पक्षपात और (२) सारी शक्ति और अधिकार मिश्नरियों के अपने हाथों में रखने की इच्छा।" (देखो सर हरनामसिंह का एड्रेस इन्डियन क्रिश्चियन कान्फ्रैंस प्रयाग में जो २ जनवरी १९१९के दैनिक लीडर में पृ० ९ पर छपा हुवा है)

जब मसीह के गल्ले के साथ इन मिश्नरियों का यह बर्ताव है, जब केवल जातीय पक्षपात तथा स्वार्थ वश होकर ये लोग अपने ईसाई भाइयों के साथ ऐसा घृणित बर्ताव कर सकते हैं, तो अन्य मतावलम्बियों के साथ जो कुछ भी करें वह थोड़ा है। अन्त में पादरी फ़रकुहार प्रिन्सपल साईंदास एम. ए. तथा डाक्टर गोकुलचन्द्र की अत्युक्ति युक्त वक्तृताओं का प्रमाण देकर—जो अपने सभासदों को हिलाने के लिये की गई थीं—पादरी साहेब भविष्य वाणी सहित इस प्रकार अपने लेख को समाप्त करते हैं—"परन्तु इस भविष्यत वाणी के कथन में संकोच नहीं कि समाज का इतिहास बड़ा न होगा। इसके वर्तमान बल के स्रोत में ही वह कुछ है जो अन्त को इस के नाश का कारण होगा। वेदों का नया भाष्य, जिस पर सारी रचना खड़ी है, अवश्य लचर हो जायगा, ज्यों ज्यों विद्या का प्रकाश बढ़ेगा। बहुत कुछ जो पुराना

और निकम्मा हो चुका है उससे ऊपर उठने के स्थान में उसे रखने का प्रयत्न दूसरा निर्बलता का हेतु है।

पुनर्जन्म और कर्म फल के सिद्धान्तों का ग्रहण स्वयं बड़ा भयावह है। जब तक वह रहेगा स्वस्थ एकेश्वर वाद असम्भव है, और जाति बन्धन की जड़ नहीं उखड़ सकती।" कैसा विद्वत्ता पूर्ण सिंहावलोकन है! आर्य्य समाज का क्यों नाश होगा? ऋषि दयानन्द के भाष्य के कारण क्योंकि वह भाष्य विद्या के प्रकाश के आगे ठहर न सकेगा। परन्तु यहां तो पादरी की भविष्य वाणी से उलट हो रहा है। जो ईसाई जाति मुर्दा गाड़ने को धर्म समझती थी वह जलाना ही पुण्य समझने लगी है। योरप और अमेरिका के मस्तिष्क अब पुनर्जन्म और कर्मफल के बिना परमेश्वर का न्याय समझने में भी अपने आपको असमर्थ बतलाते हैं। पादरियों को समझ लेना चाहिये कि उनके अनुदार, संकुचित, अभिमान युक्त व्यवहार से खृष्टीय मिशन को बड़ा भारी धक्का लग चुका है जिसका निवारण आर्य्य समाज को कुर्बानी का बकरा Scape-goat बनाने से भी नहीं होसकेगा।

समाप्त।

सद्धर्म प्रचारक।

आर्य-भाषा का बहुत पुराना साप्ताहिक पत्र, जो २८ वर्षों से सहस्रों तक सच्चे धर्म का संदेश पहुँचाता रहा है। वार्षिक मूल्य ३), आर्य-भाषा (हिन्दी) के पत्रों में इसका स्थान बहुत ऊंचा है । पक्षपातरहित होकर धार्मिक, सामाजिक तथा शास्त्रीय विषयों पर विचार करना इसका उद्देश्य रहा है । शुद्ध धार्मिक राजनीति का मार्ग यह सदा आर्य पुरुषों को दिखलाता रहा है ।

यदि मातृ भाषा की उन्नति करना चाहते हो तो इस साप्ताहिक पत्र के अवश्य ग्राहक बनो

प्रबन्धकर्त्ता, सद्धर्म प्रचारक
गुरुकुल भूमि,
शामपुर-काङ्गड़ी, पोस्ट आफ़िस,
ज़िला बिजनौर U. P.

प्रचारक पुस्तक भण्डार

१. आर्य्य पथिक लेखराम .... मूल्य
२. संस्कृत साहित्य का ऐतिहासिक अनुशीलन ,,
३. मृतक श्राद्ध पर विचार .... ,,

आर्य्य-धर्म्म ग्रन्थ-माला।

प्रथम गुच्छक—आर्यों की नित्यकर्म पद्धति ....
द्वितीय ,, पांच महायज्ञों की विधि ....
तृतीय ,, विस्तार पूर्वक सन्ध्या-विधि ....
चतुर्थ ,, आचाराऽनाचार और छूत छात ....
पंचम ,, ईसाई पक्षपात और आर्य्य-समाज ....
षष्ठ ,, वेद और आर्य्य-समाज ....
सप्तम ,, मातृभाषा का उद्धार ....
अष्टम ,, पारसी मत और वैदिकधर्म्म ....

अन्य भाग तय्यार हो रहे हैं।

कमीशन का दर—२०) और उस से अधिक खरीदार को १५) प्रतिशतक, ५०) और उससे अधिक खरीदार को २०) प्रतिशतक और १००) और उस से अधिक के खरीदार को २५) प्रतिशतक कमीशन दिया जायगा।

मिलने का पता :—

प्रबन्धकर्त्ता प्रचारक पुस्तक-भण्डार,
P. O. आर्य्यपुर कांगड़ी, जिला-बिजनौर (U. P.)

पुस्तक परिग्रहण क्रमांक 5205
दयानन्द महिला मह